Chapter तीस

गोपियों द्वारा कृष्ण की खोज

इस अध्याय में बताया गया है कि किस तरह कृष्ण से बिछुड़ जाने से रात भर कष्ट भोगती गोपियाँ उनकी खोज में एक जंगल से दूसरे जंगल में पागल स्त्रियों की तरह घूमती रहीं।

जब श्रीकृष्ण रासनृत्य के स्थल से सहसा अन्तर्धान हो गये तो उनके भाव में पूरी तरह मग्न गोपियाँ उन्हें कई जंगलों में ढूँढ़ने लगीं। वे समस्त जड़ तथा जंगम प्राणियों से कृष्ण का अता-पता पूछने लगीं। अन्त में वे इतनी हतबुद्धि हो गईं कि वे उनकी लीलाओं की नकल उतारने लगीं।

बाद में घूमती हुई गोपियों को जंगल के एक कोने में श्रीकृष्ण के पदचिह्न दिखाई पड़े जिनके साथ श्रीमती राधारानी के पदचिह्न भी मिले हुए थे। इन पदचिह्नों को देखकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और कहने लगीं कि अवश्य ही श्रीमती राधारानी ने कृष्ण की असामान्य पूजा की होगी क्योंकि उन्हें ही एकान्त में कृष्ण के संग रहने का अवसर दिया गया था। गोपियाँ मार्ग का अनुसरण करती हुईं एक ऐसे स्थल पर पहुँची जहाँ उन्हें श्रीमती राधारानी के पदचिह्न दिखने बन्द हो गये अत: वे इस निष्कर्ष पर

पहुँचीं कि कृष्ण ने अवश्य ही उन्हें अपने कन्धों पर उठा लिया होगा। अन्य स्थल पर उन्हें कृष्ण के पाँवों के अँगूठे के ही चिह्न दिखे जिससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृष्ण ने अपनी प्रियतमा को सजाने के लिए यहाँ पर फूल तोड़े होंगे। एक अन्य स्थल पर ऐसे चिह्न मिले जिससे गोपियाँ इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि यहाँ पर श्रीकृष्ण ने श्रीमती राधारानी के केश सँवारे होंगे। इन सारे विचारों से गोपियों के मन व्यथित हो गये।

चूँकि श्रीमती राधारानी का श्रीकृष्ण विशेष ध्यान रखते थे, इसलिए वे अपने को परम भाग्यशालिनी मानने लगीं। उन्होंने कृष्ण से कहा कि अब वे और नहीं चल सकतीं इसलिए उन्हें अपने कन्धों पर ले चलना होगा। किन्तु तभी कृष्ण उनकी दृष्टि से ओझल हो गये। अत्यन्त दुखित होकर श्रीमती राधारानी सर्वत्र उन्हें ढूँढ़ने लगीं और अन्त में उन्हें अपनी गोपी सखियाँ मिल गईं। उन्होंने उन सबसे आपबीती बतलाई। तब सारी गोपियाँ कृष्ण की खोज के लिए जंगल में निकल पड़ीं और जहाँ तक चाँदनी थी, गईं। किन्तु अन्ततोगत्वा वे विफल हो गईं अत: वे यमुना तट पर लौट आईं और घोर निराशा में कृष्ण की महिमाओं का गान करने लगीं।

श्रीशुक उवाच
अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गना: ।
अतप्यंस्तमचक्षाणा: करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अन्तर्हिते—अन्तर्धान हो जानेपर; भगवति—भगवान् के; सहसा एव—एकाएक; व्रज-अङ्गना:—व्रज की युवतियाँ; अतप्यन्—खिन्न हो उठीं; तम्—उसको; अचक्षाणा:—न देखकर; करिण्य:—हथिनियाँ; इव—सदृश; यूथपम्—अपने नर नायक को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् कृष्ण इस तरह एकाएक विलुप्त हो गये तो गोपियाँ उन्हें न देख सकने के कारण अत्यन्त व्यथित हो उठीं जिस तरह हथिनियों का समूह अपने नर के बिछुड़ जाने पर खिन्न हो उठता है।

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमै: ।
आक्षिप्तचित्ता: प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिका: ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गत्या—उनके हिलने डुलने से; अनुराग—स्नेहमय; स्मित—मन्द हँसी; विभ्रम—क्रीड़ापूर्ण; ईक्षितैः—तथा चितवनों से; मनः-रम—मोहक; आलाप—उनकी बातचीत से; विहार—क्रीड़ा; विभ्रमैः—तथा अन्य आकर्षण से; आक्षिप्त—अभिभूत; चित्ताः—हृदयों वाली; प्रमदाः—बालिकाएँ; रमा-पतेः—रमा के पति का या सौंदर्य तथा ऐश्वर्य के स्वामी का; ताः ताः—उनमें से हरएक; विचेष्टाः—अद्‌भुत कार्यकलाप; जगृहुः—अनुकरण करने लगी; तत्-आत्मिकाः—उनमें लीन होकर।

भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते ही गोपियों के हृदय उनकी चाल-ढाल तथा प्रेममयी मुसकान, उनकी कौतुकपूर्ण चितवन तथा मोहने वाली बातों तथा अपने साथ की जानेवाली अन्य लीलाओं से अभिभूत हो उठे। इस तरह रमा के स्वामी कृष्ण के विचारों में लीन वे गोपियाँ उनकी विविध दिव्य लीलाओं (चेष्टाओं) का अनुकरण करने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कृष्ण तथा गोपियों के मध्य हुई मनोहर वार्तालाप का वर्णन किया है—

कृष्ण ने एक गोपी से कहा, ''हे कुमुदिनी! क्या तुम इस प्यासे भौंरे को अपना मधु दोगी या नहीं?''

गोपी ने उत्तर दिया, ''हे भौंरे! कुमुदिनी का पति तो सूर्य हैं, भौंरा नहीं अतएव तुम मेरे मधु को अपना क्यों कह रहे हो?''

''किन्तु हे कुमुदिनी! तुम कुमुदिनियों का यह स्वभाव है कि तुम अपना मधु अपने पति सूर्य को न देकर अपने जारपति भौंरे को देती हो:'' कृष्ण के इन वचनों से गोपी हारकर हँसने लगी और तब उसने अपना अधरामृत पान करा दिया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने निम्नलिखित वार्तालाप का भी वर्णन किया है :

''कृष्ण ने एक गोपी से कहा : अरे! मैं जान गया कि इस नीप वृक्ष के सम्मुख आते ही तुम्हें गर्वीले सर्प ने डस लिया था। उसका विष तुम्हारे वक्षस्थल तक पहुँच चुका है किन्तु तुम भद्र बाला हो इसलिए तुमने मुझसे विष उतारने के लिए नहीं कहा। फिर भी स्वभाव से दयालु होने के कारण मैं आ गया हूँ। अब मैं अपने हाथों से तुम्हारे शरीर की मालिश करते हुए मंत्र पढ़ुँगा जिससे कि सर्प-विष उतर जाय।''

''गोपी ने कहा, ''किन्तु हे सँपेरे! मुझे किसी सर्प ने नहीं डसा है। जाकर किसी और लड़की का शरीर मलो, जिसे सचमुच साँप ने डसा हो।''

''हे भद्र बाला! आओ। तुम्हारे काँपते स्वर से मैं बतला सकता हूँ कि विष चढ़ने के कारण तुम्हें

ताप सा चढ़ा हुआ है। यह जान लेने पर भी यदि मैं तुम्हारी रक्षा न करूँ तो मैं एक निर्दोष स्त्री के वध का भागी होऊँगा। अत: मुझे उपचार करने दो।

''यह कहकर कृष्ण ने गोपी के वक्षस्थल पर अपने नाखून लगा दिये।''

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु
प्रिया: प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तय: ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषु: कृष्णविहारविभ्रमा: ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गति—उसकी चाल में; स्मित—हँसी; प्रेक्षण—देखने; भाषणा—बातचीत करने; आदिषु—इत्यादि में; प्रिया:—प्रिय गोपियाँ; प्रियस्य—अपने प्रेमी के; प्रतिरूढ—पूर्णतया लीन; मूर्तय:—उनके शरीर; असौ—वह; अहम्—मैं; तु—वास्तव में; इति—इस प्रकार कहते हुए; अबला:—स्त्रियों ने; तत्-आत्मिका:—उनके स्वरूप में; न्यवेदिषु:—घोषित किया; कृष्ण-विहार—कृष्ण की लीलाओं से उत्पन्न; विभ्रमा:—मादकता, नशा।

चूँकि प्रेमप्रिय गोपियाँ अपने प्रिय कृष्ण के विचारों में लीन थीं अत: कृष्ण गोपियों के शरीर के चलने तथा हँसने के ढंग, उनके देखने के ढंग, उनकी वाणी तथा उनके अन्य विलक्षण गुणों का अनुकरण करने लगे। उनके चिन्तन में गहरी डूबी हुई तथा उनकी लीलाओं का स्मरण करके उन्मत्त हुई गोपियों ने परस्पर घोषित कर दिया कि ''मैं कृष्ण ही हूँ।''

तात्पर्य : गोपियाँ एकदम कृष्ण के ही समान हिलने डुलने लगीं—वे उसी तरह हँसने लगीं जिस तरह कृष्ण हँसा करते, उसी तरह निर्भय होकर निहारने और बोलने लगीं। गोपियाँ कृष्ण के विचार में पूर्णतया लीन थीं और उनके आकस्मिक वियोग पर प्रेम से उन्मत्त हो चली थीं। इस तरह कृष्ण के प्रति उनका पूर्ण समर्पण हो चुका था।

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
र्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

गायन्त्य:—गाती हुई; उच्चै:—जोर जोर से; अमुम्—उनके विषय में; एव—निस्सन्देह; संहता:—टोली में मिलकर; विचिक्यु:—खोज किया; उन्मत्तक-वत्—पगली स्त्रियों की तरह; वनात् वनम्—एक जंगल से दूसरे जंगल में; पप्रच्छु:—पूछा; आकाश-वत्—आकाश की तरह; अन्तरम्—भीतर से; बहि:—तथा बाहर से; भूतेषु—समस्त प्राणियों में; सन्तम्—उपस्थित; पुरुषम्—परम पुरुष को; वनस्पतीन्—वृक्षों से।

जोर जोर से कृष्ण के बारे में गाती हुई गोपियों ने पगलायी स्त्रियों के झुंड के समान उन्हें

वृन्दावन के पूरे जंगल में खोजा। यहाँ तक कि वृक्षों से भी उन कृष्ण के विषय में पूछताछ की जो समस्त उत्पन्न वस्तुओं के भीतर तथा बाहर आकाश की भाँति परमात्मा के रूप में उपस्थित हैं।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रेम में पगलाई हुई गोपियों ने वृन्दावन के वृक्षों तक से उनके विषय में पूछडाला। वस्तुत: भगवान् कृष्ण से वास्तविक विछोह होता ही नहीं क्योंकि वे सर्वव्यापी परमात्मा हैं।

दृष्टो व: कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मन: ।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनै: ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट:—देखा गया है; व:—तुम्हारे द्वारा; कच्चित्—क्या; अश्वत्थ—हे अश्वत्थ (पवित्र पीपल का वृक्ष); प्लक्ष—हे प्लक्ष (पाकड़); न्यग्रोध—हे न्यग्रोध (बरगद का पेड़); न:—हमारे; मन:—मन; नन्द—नन्द महाराज का; सूनु:—पुत्र; गत:—चला गया है; हृत्वा—चुराकर; प्रेम—प्रेममय; हास—अपनी मुसकान से; अवलोकनै:—तथा चितवन से।

[गोपियों ने कहा] : हे अश्वत्थ वृक्ष, हे प्लक्ष, हे न्यग्रोध, क्या तुमने कृष्ण को देखा है? वह नन्दनन्दन अपनी प्रेमभरी मुस्कान तथा चितवन से हमारे चित्तों को चुराकर चला गया है।

कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पका: ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मित: ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; कुरबक-अशोक-नाग-पुन्नाग-चम्पका:—हे कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग तथा चम्बक वृक्षो; राम—बलराम का; अनुज:—छोटा भाई; मानिनीनाम्—मान करने वाली स्त्रियों का; इत:—यहाँ से गुजरते हुए; दर्प—घमंड; हर—चूर करने वाली; स्मित:—हँसी।

हे कुरबक वृक्ष, हे अशोक, हे नागकेसर, पुन्नाग तथा चम्पक, क्या इस रास्ते से होकर बलराम का छोटा भाई गया है, जिसकी हँसी समस्त अभिमान करनेवाली स्त्रियों के दर्प को हरने वाली है।

तात्पर्य : ज्योंही गोपियों ने देखा कि अमुक वृक्ष उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा है त्योंही अधीर होकर वे दूसरे वृक्ष से पूछने के लिए जलदी से आगे चल पड़ती।

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युत: ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; तुलसि—हे तुलसी वृक्ष; कल्याणि—हे दयामयी; गोविन्द—कृष्ण के; चरण—पाँव; प्रिये—जिन्हें प्रिय हैं; सह—साथ; त्वा—तुम्हारे; अलि—भौंरों के; कुलैः—झुंडों के साथ; बिभ्रत्—ले जाते हुए; दृष्टः—देखा हुआ; ते—तुम्हारे द्वारा; अति-प्रियः—अत्यन्त प्रिय; अच्युतः—भगवान् अच्युत।

हे अत्यन्त दयालु तुलसी, तुम्हें तो गोविन्द के चरण इतने प्रिय हैं। क्या तुमने अपने को [तुलसी] पहने और भौंरों के झुँड से घिरे हुए उन अच्युत को इधर से जाते हुए देखा है?

तात्पर्य : आचार्यों की व्याख्या है कि *चरण* शब्द उसी तरह आदरसूचक हैं जिस तरह *एवं वदन्त्याचार्यचरणाः* में है। श्रीगोविन्द द्वारा पहनी माला के चारों ओर गुंजार करते भौंरे उनको अर्पित की गई तुलसी-मंजरियों की सुगन्धि द्वारा आकृष्ट थे। गोपियों को लगा कि वृक्ष नर हैं इसलिए उन्होंने उत्तर नहीं दिया किन्तु तुलसी तो स्त्री है अतएव उनकी दीन दशा पर अवश्य ही दया करेगी।

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मालति—हे मालती (श्वेत चमेली की किस्म); अदर्शि—देखा गया; वः—तुम्हारे द्वारा; कच्चित्—क्या; मल्लिके—हे मल्लिका (भिन्न प्रकार की चमेली); जाति—हे जाति (सफेद चमेली की किस्म); यूथिके—हे यूथिका (अन्य चमेली); प्रीतिम्—प्रीति; वः—तुम्हारे लिए; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; यातः—यहाँ से होकर गये हैं; कर—अपने हाथ के; स्पर्शेन—स्पर्श से; माधवः—साक्षात् वसन्त, कृष्ण।

हे मालती, हे मल्लिका, हे जाति तथा यूथिका, क्या माधव तुम सबों को अपने हाथ का स्पर्श-सुख देते हुए इधर से गये हैं?

तात्पर्य : जब तुलसी तक ने गोपियों को कोई उत्तर नहीं दिया तो वे सुगन्धित चमेली के पुष्पों के पास पहुँचीं। चमेली लताओं को नम्रता से झुका देखकर गोपियों ने कल्पना की कि इन्होंने अवश्य ही कृष्ण को देखा होगा इसलिए वे अपनी प्रसन्नता में दीनता दिखला रही हैं।

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

चूत—हे आम की लतर; प्रियाल—हे प्रियाल वृक्ष (एक तरह का शालवृक्ष); पनस—हे कटहल के वृक्ष; आसन—हे आसन (पीला शालवृक्ष); कोविदार—हे कोविदार; जम्बु—हे जामुन; अर्क—हे अर्क (आक, मदार); बिल्व—हे बेल; बकुल—हे छुईमुई; आम्र—हे आम के वृक्ष; कदम्ब—हे कदम्ब; नीपाः—हे नीप (छोटा कदम्ब); ये—जो; अन्ये—अन्य; पर—दूसरों के; अर्थ—लिए; भवकाः—जिनका अस्तित्व; यमुना-उपकूलाः—यमुना नदी के तट के पास रहने वाले; शंसन्तु—कृपा करके बताइये; कृष्ण-पदवीम्—कृष्ण द्वारा अपनाया गया रास्ता; रहित—विहीन; आत्मनाम्—हमारे मनों से; नः—हमको।

हे चूत, हे प्रियाल, हे पनस, हे आसन तथा कोविदार, हे जम्बु, हे अर्क, हे बिल्ब, बकुल तथा आम्र, हे कदम्ब तथा नीप एवं यमुना के तट के समीप स्थित अन्य सारे पौधो और वृक्षो, अन्यों के उपकार के लिए अपना जीवन अर्पित करने वालो, हम गोपियों के मन चुरा लिये गये हैं अत: कृपा करके हमें बतलायें कि कृष्ण गये कहाँ हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *चूत* एक आम की लतर है, जबकि *आम्र* आम का वृक्ष है। वे बतलाते हैं कि *नीप* यद्यपि अधिक प्रसिद्ध वृक्ष नहीं है किन्तु इसमें बड़े बड़े फूल लगते हैं। कृष्ण को खोजने के लिए गोपियों की हताशा इसीसे स्पष्ट हो जाती है कि वे नगण्य *अर्क के पौधे* (आक, मदार) के पास गईं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती वृन्दावन के वृक्षों के विषय में यह जानकारी देते हैं *नीप* धूसर कदम्ब है और इसके फूल बड़े होते हैं। *कदम्ब* के फूल छोटे होते हैं और उनमें अति मधुर गंध रहती है। *कोविदार* एक विशेष प्रकार का *काञ्चनार* है। यद्यपि *अर्क* अत्यन्त तुच्छ पौधा है किन्तु यह सदैव गोपीश्वर (वृन्दावन जंगल में शिव की मूर्ति) के निकट उगता है क्योंकि यह उन्हें प्रिय है।

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गनहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद्वा
आहो वराहवपुष: परिरम्भणेन ॥ १० ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; ते—तुम्हारे द्वारा; कृतम्—की गयी; क्षिति—हे पृथ्वी; तप:—तपस्या; बत—निस्सन्देह; केशव—भगवान् कृष्ण के; अङ्घ्रि—पैर द्वारा; स्पर्श—स्पर्श किये जाने से; उत्सव—प्रसन्नता का अनुभव होने से; उत्पुलकित—हर्ष से रोमांचित; अङ्ग-रुहै:—अपने शरीर के रोमों से (जो तुम पर उगी घासें तथा वृक्ष हैं); विभासि—सुन्दर लगती हो; अपि—शायद; अङ्घ्रि—पाँव से (कृष्ण के पाँव से); सम्भव:—उत्पन्न; उरुक्रम—कृष्ण के वामन अवतार, वामनदेव के; विक्रमात्—चलने से; वा—अथवा; आह उ—या फिर अन्य; वराह—भगवान् कृष्ण के वराह अवतार के; वपुष:—शरीर द्वारा; परिरम्भणेन—आलिंगन के कारण।

हे माता पृथ्वी, आपने भगवान् केशव के चरणकमलों का स्पर्श पाने के लिए ऐसी कौन सी तपस्या की है, जिससे उत्पन्न परम आनन्द से आपके शरीर में रोमांच हो आया है? इस अवस्था में आप अतीव सुन्दर लग रही हैं। क्या भगवान् के इसी प्राकट्य के समय आपको ये भाव-लक्षण प्राप्त हुए हैं या फिर और पहले जब उन्होंने आप पर वामनदेव के रूप में अपने पाँव रखे थे या इससे भी पूर्व जब उन्होंने वराहदेव के रूप में आपका आलिंगन किया था?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने गोपियों के विचारों की निम्नवत् व्याख्या की है, ''शायद इन वृक्षों तथा लताओं ने (जिनका उल्लेख पिछले श्लोकों में हुआ है) हमारे प्रश्न नहीं सुने क्योंकि वे भगवान् विष्णु के ध्यान में मग्न थे। या शायद, चूँकि वे हमें यह नहीं बताना चाहते कि कृष्ण कहाँ गये हैं, वे पवित्र स्थान में रहते हुए भी कठोर हृदय हैं। जो हो, पवित्र स्थान के वासियों की इस तरह अनावश्यक आलोचना करने से क्या लाभ? हम कह नहीं सकतीं कि क्या वे सचमुच जानते हैं कि कृष्ण कहाँ गये हैं। अत: चलो ऐसे किसी को ढूँढ़ें जो निश्चित रूप से जानता हो कि वे कहाँ हैं।'' इस तरह गोपियों ने निष्कर्ष निकाला कि चूँकि कृष्ण को इसी पृथ्वी पर कहीं न कहीं होना है, अत: पृथ्वी उनके विषय में अवश्य जानती होगी।

तब गोपियों ने सोचा, ''चूँकि कृष्ण सदैव पृथ्वी पर विचरण करते हैं अतएव पृथ्वी उनसे कभी विलग नहीं होती अत: वह यह नहीं समझ सकती कि उनकी अनुपस्थिति में उनके माता-पिता, सखियाँ तथा सेवक कितना कष्ट भोगते हैं। तो चलो उससे पूछें कि उसने भगवान् केशव के चरणों के निरन्तर स्पर्श के सौभाग्य को पाते रहने के लिए कौन सी तपस्या की है।''

अप्येणपत्न्युपगत: प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो व: ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रज: कुलपतेरिह वाति गन्ध: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; एण—हिरण की; पत्नि—हे पत्नी; उपगत:—भेंट हुई है; प्रियया—अपनी प्रिया के साथ; इह—यहाँ; गात्रै:—अपने अंगों के द्वारा; तन्वन्—उत्पन्न करते; दृशाम्—आँखों का; सखि—हे सखी; सु-निर्वृतिम्—परम आनन्द; अच्युत:—अच्युत कृष्ण; व:—तुम्हारा; कान्ता—अपनी सहेली का; अङ्ग-सङ्ग—अंग स्पर्श के कारण; कुच—स्तन पर; कुङ्कुम—सिन्दूर से; रञ्जिताया:—रँगा हुआ; कुन्द—चमेली फूल की; स्रज:—माला का; कुल—समूह (गोपियों के) के; पते:—स्वामी का; इह—यहाँ आसपास; वाति—बह रही है; गन्ध:—सुगन्ध।

हे सखी हिरनी, क्या तुम्हारी आँखों को परमानन्द प्रदान करने वाले भगवान् अच्युत अपनी प्रिया समेत इधर आये थे? दरअसल इस ओर कुन्द फूलों से बनी उनकी उस माला की महक आ रही है, जो उनके द्वारा आलिंगित उनकी प्रिया सखी के स्तनों पर लगे कुंकुम से लेपित थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की निम्नलिखित मोहक टीका की है :

गोपियों ने हिरनी से पूछा, ''हे सखी हिरनी! तुम्हारी विमल आँखों में जो आनन्द है उससे हम

बतला सकती हैं कि कृष्ण ने अपने अंगों, मुख आदि के सौन्दर्य से तुम्हारे आनन्द को बढ़ाया है। तुम कृष्ण-दर्शन के सुख की अनुभूति की इच्छुक हो अतएव तुम्हारी आँखें उन्हीं का पीछा कर रही हैं। वस्तुत:, वे तुमसे विलग नहीं हो सकते।

तब हिरनी को अपने सहज भाव से घूमते देखकर गोपियाँ चिल्ला उठीं, ''ओ! बताओ न, कि तुमने कृष्ण को देखा है!'' देखो न यह हिरनी चलते समय हमारी ओर मुड़कर देख रही है मानो कहना चाहती हैं कि ''मैं तुम्हें उनका दर्शन करा दूँगी, बस तुम मेरे पीछे पीछे आओ।'' इस निर्दय वृन्दावन में एकमात्र यही दयालु जीव है।''

''ज्योंही गोपियाँ हिरनी के पीछे-पीछे चलती हैं, वह ओझल हो जाती है और वे फिर से चिल्ला उठती हैं ''अरे! हमें कृष्ण के पास ले जा रही वह हिरणी क्यों नहीं दिख रही है?

''एक गोपी सुझाव देती है कि कृष्ण यहीं कहीं पास में होंगे और वह हिरनी उन से डरने के कारण यहीं कहीं छिप गई होगी जिससे वह यह प्रकट करने की संभावित त्रुटि से बच सके कि वे यहीं हैं।'' इस प्रकार अनुमान लगाते लगाते उन्हें उधर से सहसा बहने वाली किसी सुगन्ध का पता चल जाता है, तो वे खुशी से उछल कर बारम्बार कहती हैं, ''हाँ हाँ। यही है! अपनी सखी के संसर्ग से कृष्ण के शरीर की चमेली की माला सखी के स्तनों पर लगे कुमकुम से चुपड़ गई और उन सबों की सुगंध हम तक आ रही है।'' इस तरह गोपियों को दो प्रेमियों के शरीरों की, कृष्ण की चमेली माला की तथा उनकी प्रेमिका के स्तनों पर लगे अंगराग की सुगन्ध का पता चल गया।

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धै: ।
अन्वीयमान इह वस्तरव: प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकै: ॥ १२॥

शब्दार्थ

बाहुम्—अपनी भुजा; प्रिया—अपनी प्रिया के; अंसे—कंधे पर; उपधाय—रखकर; गृहीत—पकड़े हुए; पद्म:—कमल; राम-अनुज:—बलराम के छोटे भाई, कृष्ण; तुलसिका—तुलसी मञ्जरियों के चारों ओर मँडराते; अलि-कुलै:—अनेक भौंरों से; मद—नशे से; अन्धै:—अन्धे; अन्वीयमान:—पीछा किये जाते; इह—यहाँ; व:—तुम्हारे; तरव:—हे वृक्षों; प्रणामम्—झुकना, नत होना; किम् वा—अथवा; अभिनन्दति—स्वीकार किया; चरन्—विचरण करते हुए; प्रणय—प्रेम से पूरित; अवलोकै:—अपनी चितवन से।

हे वृक्षो, हम देख रही हैं कि तुम झुक रहे हो। क्या जब राम के छोटे भाई इधर से गये

जिनके पीछे-पीछे गले में सुशोभित तुलसी मंजरी की माला के चारों ओर उन्मत्त भौंरे मँडरा रहे थे तो उन्होंने अपनी स्नेहपूर्ण चितवन से तुम्हारे प्रणाम को स्वीकार किया था? वे अपनी बाँह अवश्य ही अपनी प्रिया के कंधे पर रखे रहे होंगे और अपने खाली हाथ में कमल का फूल लिये रहे होंगे।

तात्पर्य : गोपियों ने देखा कि पर्याप्त फलों तथा फूलों से लदकर झुके हुए वृक्ष भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर रहे थे। गोपियों ने सोचा कि अवश्य ही कृष्ण उधर से अभी अभी गुजरे होंगे क्योंकि वृक्ष अभी तक झुके हुए थे। चूँकि श्रीकृष्ण ने अपनी प्रियतमा के साथ जाने के लिए गोपियों को छोड़ दिया था इसलिए उन्हें ईर्ष्या हो रही थी। वे कल्पना करने लगीं कि श्रीकृष्ण अपने प्रेमालाप से थक गये होंगे अत: वे अपनी बाईं बाँह अपनी प्रिया के कोमल कंधे पर रखे हुए होंगे। गोपियों ने यह भी सोच डाला कि कृष्ण अपने दाहिने हाथ में एक नीला कमल लिए होंगे जिससे वे अपनी प्रिया के मुख की सुगन्धि को सूँघने के बाद उस पर उत्सुकता से मंडराने का प्रयास करने वाले भौंरों को भगा सकें। यह दृश्य इतना सुन्दर था कि गोपियों ने कल्पना की कि उन्मत्त भौंरों ने इस प्रेमी-युगुल का पीछा करने के लिए तुलसी के उद्यान को पीछे छोड़ दिया था।

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पते: ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पृच्छत—जरा पूछो; इमा:—इन; लता:—लताओं से; बाहून्—बाँहें (टहनियाँ); अपि—यद्यपि; आश्लिष्टा:—आलिंगन करती हुई; वनस्पते:—वृक्ष का; नूनम्—निश्चय ही; तत्—उसका, कृष्ण के; कर-ज—हाथ के नाखूनों से; स्पृष्टा:—स्पर्श किया हुआ; बिभ्रति—धारण करती है; उत्पुलकानि—चमड़ी पर प्रसन्नता के फफोले; अहो—जरा देखो।

चलो इन लताओं से कृष्ण के विषय में पूछा जाय। यद्यपि वे अपने पति रूप इस वृक्ष की बाँहों का आलिंगन कर रही हैं किन्तु अवश्य ही कृष्ण ने अपने नाखूनों से इनका स्पर्श किया होगा क्योंकि प्रसन्नता के मारे इनकी त्वचा पर फफोले प्रकट हो रहे हैं।

तात्पर्य : गोपियों का तर्क था कि लताएँ मात्र अपने पति वृक्ष के शारीरिक सम्पर्क से ही प्रसन्नता का लक्षण नहीं प्रकट कर सकतीं थीं। इस तरह उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि लताएँ अपने पति के बलिष्ट अंगों का आलिंगन कर रही थीं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा जब वे जंगल से होकर जा रहे थे अवश्य ही उनका स्पर्श हुआ होगा।

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उन्मत्त—पगलाई; वचः—शब्द बोलती हुई; गोप्यः—गोपियाँ; कृष्ण-अन्वेषण—कृष्ण की खोज करते हुए; कातराः—किंकर्तव्यविमूढ़; लीलाः—दिव्य लीलाएँ; भगवतः—भगवान् की; ताः ताः—उनमें से प्रत्येक को; हि—निस्सन्देह; अनुचक्रुः—अनुकरण किया; तत्-आत्मिकाः—उनके विचारों में लीन होकर।

ये शब्द कहने के बाद कृष्ण को खोजते खोजते किंकर्तव्यविमूढ़ हुई गोपियाँ उनके विचारों में पूर्णतया लीन होकर उनकी विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं।

कस्याचित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम् ।
तोकयित्वा रुदत्यन्या पदाहन्शकटायतीम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

कस्याचित्—गोपियों में से एक ने; पूतनायन्त्याः—जो पूतना बनी थी; कृष्णायन्ती—दूसरी जो कृष्ण बनी थी; अपिबत्—पिया; स्तनम्—स्तन को; तोकयित्वा—शिशु बनकर; रुदती—चिल्लाती; अन्या—दूसरी ने; पदा—अपने पाँव से; अहन्—मारा; शकटा-यतीम्—जो गाड़ी बनी थी।

एक गोपी ने पूतना की नकल उतारी जबकि दूसरी बालक कृष्ण बन गई और वह पहले वाली का स्तनपान करने लगी। अन्य गोपी ने शिशु कृष्ण के रोदन का अनुकरण करते हुए उस गोपी पर पाद-प्रहार किया जो शकटासुर की भूमिका निभा रही थी।

दैत्यायित्वा जहारान्यामेको कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥ १६॥

शब्दार्थ

दैत्यायित्वा—असुर (तृणावर्त) बनकर; जहार—उठा ले गई; अन्याम्—दूसरी गोपी को; एका—एक गोपी; कृष्ण-अर्भ—बालक कृष्ण का; भावनाम्—भाव धारण करने वाली; रिङ्गयाम् आस—रेंगने लगी; का अपि—उनमें से एक; अङ्घ्री—उसके दो पाँव; कर्षन्ती—घसीटती हुई; घोष—पायजेब का; निःस्वनैः—शब्द करती।

एक गोपी तृणावर्त बन गई और वह दूसरी गोपी को जो बालक कृष्ण बनी थी दूर ले गई जबकि एक अन्य गोपी रेंगने लगी जिससे उसके पाँव घसीटते समय पायजेब बजने लगी।

तात्पर्य : गोपियों ने कृष्ण की बालक रूप से लेकर सारी लीलाओं का अनुकरण करना शुरू कर दिया।

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।

वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

कृष्ण-रामायिते—कृष्ण तथा बलराम बनकर; द्वे—दो गोपियाँ; तु—तथा; गोपायन्त्यः—ग्वालबालों की तरह बनकर; च—तथा; काश्चन—किसी ने; वत्सायतीम्—वत्सासुर बनकर; हन्ति—मारा; च—तथा; अन्या—दूसरी; तत्र—वहाँ; एका—एक; तु—और भी; बकायतीम्—बकासुर का अभिनय करने वाली।

दो गोपियाँ उन तमाम गोपियों के बीच राम तथा कृष्ण बन गईं जो ग्वालबालों का अभिनय कर रही थीं। एक गोपी ने कृष्ण द्वारा राक्षस वत्सासुर के वध का अनुकरण किया जिसमें दूसरी गोपी वत्सासुर बनी थी। गोपियों के एक जोड़े ने बकासुर-वध का अभिनय किया।

आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुवर्ततीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८॥

शब्दार्थ

आहूय—बुलाकर; दूर—दूरी पर स्थित; गाः—गौवों को; यद्वत्—जिस तरह; कृष्णः—कृष्ण; तम्—उसको; अनुवर्ततीम्—अनुकरण करने वाली गोपी को; वेणुम्—वंशी; क्वणन्तीम्—शब्द करती; क्रीडन्तीम्—खेल खेलती; अन्याः—दूसरी गोपियों ने; शंसन्ति—प्रशंसा की; साधु इति—"बहुत अच्छा!"

जब एक गोपी ने पूरी तरह अनुकरण कर दिखाया कि कृष्ण किस तरह दूर विचरण करती गौवों को बुलाते थे, वे किस तरह वंशी बजाते थे और वे किस तरह विविध खेलों में लगे रहते थे तो अन्यों ने बहुत खूब, बहुत खूब, (वाह वाह) चिल्लाकर बधाई दी।

कस्याञ्चित्स्वभुजं न्यस्य
चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं पश्यत गतिं
ललितामिति तन्मनाः ॥ १९॥

शब्दार्थ

कस्याञ्चित्—उनमें से एक की; स्व-भुजम्—अपनी बाँह; न्यस्य—(कंधे पर) रखकर; चलन्ती—चलती हुई; आह—बोली; अपरा—दूसरी; ननु—निस्सन्देह; कृष्णः—कृष्ण; अहम्—मैं हूँ; पश्यत—जरा देखो; गतिम्—मेरी चाल; ललिताम्—मनोहर; इति—इन शब्दों के साथ; तत्—उनमें; मनाः—पूर्णतया लीन मन से।

एक अन्य गोपी अपने मन को कृष्ण में स्थिर किये अपनी बाँह को दूसरी सखी के कन्धे पर टिकाये चलने लगी और बोली "मैं कृष्ण हूँ। जरा देखो तो मैं कितनी शान से चल रही हूँ।"

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मय ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २०॥

शब्दार्थ

मा भैष्ट—मत डरो; वात—हवा, अंधड़; वर्षाभ्याम्—तथा वर्षा से; तत्—उससे; त्राणम्—तुम्हारा उद्धार; विहितम्—नियोजित किया जा चुका है; मया—मेरे द्वारा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; एकेन—एक; हस्तेन—हाथ से; यतन्ती—प्रयत्न करती; उन्निदधे—उठा लिया; अम्बरम्—अपना वस्त्र।

एक गोपी ने कहा : ''आँधी-वर्षा से मत डरो।'' मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।'' यह कहकर उसने अपना दुपट्टा अपने सिर के ऊपर उठा लिया।

तात्पर्य : यहाँ पर एक गोपी कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाने का अनुकरण कर रही है।

आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानाम्ननु दण्डकृत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आरुह्य—ऊपर उठा कर; एका—एक गोपी; पदा—अपने पाँव से; आक्रम्य—ऊपर चढ़कर; शिरसि—सिर पर; आह—बोली; अपराम्—दूसरी से; नृप—हे राजा (परीक्षित); दुष्ट—दुष्ट; अहे—अरे साँप; गच्छ—चले जाओ; जातः—जन्मा; अहम्—मैं; खलानाम्—ईर्ष्यालुओं का; ननु—निस्सन्देह; दण्ड—दण्ड; कृत्—लगाने वाला।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] हे राजन्, एक गोपी दूसरी के कन्धे पर चढ़ गई और अपना पाँव एक अन्य गोपी के सिर पर रखती हुई बोली ''रे दुष्ट सर्प, यहाँ से चले जाओ, तुम जान लो कि मैंने इस जगत में दुष्टों को दण्ड देने के लिए ही जन्म लिया है।''

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ कृष्ण द्वारा कालिय को दण्ड देने का अनुकरण करती हैं।

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ।
चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एका—उनमें से एक; उवाच—बोली; हे गोपाः—अरे ग्वालबालो; दाव-अग्निम्—जंगल की आग को; पश्यत—देखो; उल्बणम्—भयानक; चक्षूंषि—अपनी आँखें; आशु—तुरन्त, जल्दी से; अपिदध्वम्—बन्द करो; वः—तुम्हारा; विधास्ये—बन्दोबस्त करूँगी; क्षेमम्—सुरक्षा का; अञ्जसा—आसानी से।

तब एक दूसरी गोपी बोल पड़ी, मेरे प्रिय ग्वालबालो, जंगल में लगी इस आग को तो देखो, तुरन्त अपनी आँखें मूँद लो। मैं आसानी से तुम्हारी रक्षा करूँगी।

बद्धान्यया स्त्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ।
बध्नामि भाण्डभेत्तारं हैयङ्गवमुषं त्विति ।
भीता सुदृक्मिपधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

बद्धा—बाँधी गई; अन्यया—दूसरी गोपी द्वारा; स्त्रजा—फूल की माला से; काचित्—एक गोपी; तन्वी—छरहरी; तत्र—वहाँ; उलूखले—ओखली से; बध्नामि—बाँध रही हूँ; भाण्ड—घड़ों के; भेत्तारम्—तोड़ने वाले को; हैयम्-गव—पिछले दिन के दूध

से बचे मक्खन का; मुषम्—चोर; तु—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार कहते हुए; भीता—भयभीत; सु-दृक्—सुन्दर आँखों वाली; पिधाय—ढककर; आस्यम्—अपना मुँह; भेजे—बना लिया; भीति—डर का; विडम्बनम्—बहाना।

एक गोपी ने अपनी एक छरहरी सी सखी को फूलों की माला से बाँध दिया और कहा, ''अब मैं इस बालक को बाँध दूँगी जिसने मक्खन की हँडिया तोड़ दी है और मक्खन चुरा लिया है।'' तब दूसरी गोपी अपना मुँह तथा सुन्दर आँखें अपने हाथ से ढक कर भयभीत होने की नकल करने लगी।

एवं कृष्णं पृच्छमाना गण्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; पृच्छमानाः—पूछती हुईं; वृन्दावन—वृन्दावन जंगल की; लताः—लताओं से; तरून्—तथा वृक्षों से; व्यचक्षत—उन्होंने देखा; वन—जंगल के; उद्देशे—एक स्थान पर; पदानि—पाँवों के चिह्न; परम-आत्मनः—परमात्मा के।

जब गोपियाँ इस तरह कृष्ण की लीलाओं की नकल कर उतार रही थीं और वृन्दावन की लताओं तथा वृक्षों से पूछ रही थीं कि भगवान् कृष्ण कहाँ हो सकते हैं, तो उन्हें जंगल के एक कोने में उनके पदचिन्ह दिख गये।

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५॥

शब्दार्थ

पदानि—पदचिह्न; व्यक्तम्—स्पष्टतः; एतानि—ये; नन्द-सूनोः—नन्द महाराज के पुत्र के; महा-आत्मनः—महात्मा; लक्ष्यन्ते—निश्चित रूप से हैं; हि—निस्सन्देह; ध्वज—पताका; अम्भोज—कमल; वज्र—वज्र; अङ्कुश—हाथी हाँकने का अंकुश; यव-आदिभिः—जौ की बाली इत्यादि।

[गोपियों ने कहा]: इन पदचिन्हों में ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश, जौ की बाली इत्यादि के चिन्ह स्पष्ट बतलाते हैं कि ये नन्द महाराज के पुत्र उसी महान आत्मा (कृष्ण) के हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका करते हुए कृष्ण के चरणकमलों के प्रतीकात्मक चिह्नों की शास्त्रोक्त जानकारी दी है।

स्कन्द पुराण के निम्नलिखित श्लोकों में यह बताया गया है कि कृष्ण के चरणों में किस स्थान पर कौन सा चिह्न है और क्यों है—

दक्षिणस्य पदांगुष्ठमूले चक्रं बिभर्त्यजः।

तत्र भक्तजनस्यारिषड्वर्गच्छेदनाय सः।

''अजन्मा भगवान् के दाएँ पाँव के अँगूठे के नीचे चक्र का चिह्न है, जो उनके भक्तों के छः (मानसिक) शत्रुओं का छेदन करने वाला है।''

मध्यमांगुलिमूले च धत्ते कमलमच्युतः।

ध्यातृचित्तद्विरेफाणां लोभनायाति शोभनाम्।

''अच्युत भगवान् के उसी पाँव के बीच की अँगुली के नीचे एक कमल फूल है, जो उनके चरणों का ध्यान करने वाले भ्रमररूपी भक्तों के मन में उनके प्रति लालसा को बढ़ाने वाला है।''

कनिष्ठमूलतो वज्रं भक्तपापाद्रिभेदनम्।

पार्ष्णिमध्येंऽकुशं भक्तचित्तेभवशकारिणम्।

''उनके पाँव की छिंगुरी के नीचे वज्र है, जो उनके भक्तों के विगत पापों के पर्वतों को ध्वस्त करता है और उनकी एड़ी के बीचोबीच अंकुश का चिह्न है, जो उनके भक्तों के मन रूपी हाथियों को वश में करता है।''

भोगसम्पन्मयं धत्ते यवमंगुष्ठपर्वणि

''दाहिने अँगूठे के पोर में जौ की बाली का चिह्न है, जो समस्त प्रकार के भोग्य ऐश्वर्यों का सूचक है।''

स्कन्द पुराण में यह भी मिलता है—

वज्रं वै दक्षिणे पार्श्वे अंकुशो वै तदग्रतः

''वज्र उनके दाएँ पाँव की दाईं ओर और अंकुश उसके नीचे पाया जाता है।''

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों का कहना है कि चूँकि यहाँ पर जिन पाँवों की चर्चा हो रही है वे भगवान् कृष्ण के हैं, अतः हमें जान लेना होगा कि वज्र उनकी छोटी अँगुली के नीचे है और अंकुश वज्र के नीचे है। एड़ी पर अंकुश होना नारायण तथा अन्य विष्णुतत्वों में पाया जाता है।''

इस तरह *स्कन्द पुराण* में कृष्ण के दाहिने पाँव में छः चिह्न बतलाये गये हैं। ये हैं चक्र, ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश तथा जौ की बाली। *वैष्णव तोषणी* में तो और अधिक चिह्नों का उल्लेख है उनके पाँव के बीचोंबीच से निकलने वाली खड़ी रेखा जो उनके पाँव के अँगूठे तथा दूसरी अँगुली के

बीचोबीच तक जाती है, चक्र के नीचे छत्र, उनके पाँव के मध्य भाग के नीचे चारों दिशाओं में चार *स्वस्तिक* चिह्न, उन चार विन्दुओं पर जहाँ प्रत्येक *स्वस्तिक* अगले स्वस्तिक से मिलता है चार जम्बूफल; *स्वस्तिकों* के बीच में एक अष्टभुज। इस तरह कृष्ण के दाहिने पाँव में ग्यारह चिह्न हो जाते हैं।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कृष्ण के बाएँ पाँव के चिह्नों का वर्णन इस प्रकार किया है : अँगूठे के नीचे शंख है, जिसका मुँह अँगूठे की ओर है। बीच की अँगुली के नीचे दो समकेन्द्रिक वृत्त हैं, जो अन्त: तथा बाह्य आकाश के द्योतक हैं। इस चिह्न के नीचे कामदेव का बिना डोरी का धनुष है और इस धनुष के नीचे एक त्रिभुज है और इस त्रिभुज को चार जलपात्र घेरे हैं। इस त्रिभुज के नीचे अर्धचन्द्र है, जिसके बिन्दुओं को दो त्रिभुज स्पर्श करते हैं और इस अर्धचन्द्र के नीचे एक मछली है।

इस तरह विशिष्ट चिह्न कुल मिलाकर १९ हो जाते हैं, जो भगवान् कृष्ण के चरणकमलों के तलुवे में पाये जाते हैं।

तैस्तै: पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतो 'बला: ।
वध्वा: पदै: सुपृक्तानि विलोक्यार्ता: समब्रुवन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तै: तै:—उन उन; पदै:—चरणचिह्नों के द्वारा; तत्—उसके; पदवीम्—मार्ग को; अन्विच्छन्त्य:—ढूँढ़ती हुई; अग्रत:—आगे की ओर; अबला:—बालाएँ; वध्वा:—उनकी विशेष प्रिया को; पदै:—चरणचिह्नों के साथ; सुपृक्तानि—पूरी तरह से मिले हुए; विलोक्य—देखकर; आर्ता:—दुखी; समब्रुवन्—बोलीं।

गोपियाँ श्रीकृष्ण के अनेक पदचिन्हों से प्रदर्शित उनके मार्ग का अनुमान करने लगीं, किन्तु जब उन्होंने देखा कि ये चिन्ह उनकी प्रियतमा के चरणचिन्हों से मिल-जुल गये हैं, तो वे व्याकुल हो उठीं और इस प्रकार कहने लगीं।

कस्या: पदानि चैतानि यातायानन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठाया: करेणो: करिणा यथा ॥ २७॥

शब्दार्थ

कस्या:—किसी एक गोपी के; पदानि—चरणचिह्न; च—भी; एतानि—ये; यातायाा:—जो जा रही थी; नन्द-सूनुना—नन्द महाराज के पुत्र के साथ साथ; अंस—जिसके कंधे पर; न्यस्त—रखा हुआ; प्रकोष्ठाया:—उनका हाथ; करेणो:—हथिनी के; करिणा—हाथी द्वारा; यथा—जिस तरह।

[गोपियों ने कहा] : यहाँ पर हमें किसी गोपी के चरणचिन्ह दिख रहे हैं, जो अवश्य ही

नन्द महाराज के पुत्र के साथ साथ चल रही होगी। उन्होंने उसके कंधे पर अपना हाथ उसी तरह रखा होगा जिस तरह एक हाथी अपनी सूँड़ अपनी सहगामिनी हथिनी के कंधे पर रख देता है।

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अनया—उसके द्वारा; आराधितः—भलीभाँति पूजित; नूनम्—निश्चय ही; भगवान्—भगवान्; हरिः—कृष्ण; ईश्वरः—परम नियन्ता; यत्—इतना कि; नः—हमको; विहाय—त्यागकर; गोविन्दः—भगवान् गोविन्द; प्रीतः—प्रसन्न; याम्—जिसको; अनयत्—ले गये; रहः—एकान्त स्थान में।

इस विशिष्ट गोपी ने निश्चित ही सर्वशक्तिमान भगवान् गोविन्द की पूरी तरह पूजा की होगी क्योंकि वे उससे इतने प्रसन्न हो गये कि उन्होंने हम सबों को छोड़ दिया और उसे एकान्त स्थान में ले आये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है कि *आराधितः* शब्द श्रीमती राधारानी के लिए आया है। उनकी टीका है ''शुकदेव गोस्वामी ने उसका नाम गुप्त रखने का भरसक प्रयास किया है किन्तु उनके मुखरूपी चन्द्रमा से वह स्वतः प्रकाशित हो उठता है। उन्होंने राधा का नाम ले लिया, यह श्रीमती राधारानी की कृपा है, अतः *आराधितः* शब्द राधा के सौभाग्य को सूचित करने वाला दुन्दुभिघोष है।''

यद्यपि गोपियाँ श्रीमती राधारानी के प्रति ईर्ष्यालु लगती हैं किन्तु वे यह देखकर पुलकित थीं कि राधा ने श्रीकृष्ण को बन्दी बना लिया था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्रील रूप गोस्वामी कृत *श्री उज्ज्वल नीलमणि* में श्रीमती राधारानी के पदचिह्नों का जो विस्तृत वर्णन है, उसे उद्धृत किया है—

''उनके दाएँ पाँव के अँगूठे के नीचे जौ का चिह्न है, उसके नीचे चक्र, चक्र के नीचे छत्र तथा छत्र के नीचे बाजूबन्द (कंगन) है। उनके पाँव के बीच से एक खड़ी रेखा अँगूठे तथा दूसरी अँगुली के बीच तक जाती है। बीच की अँगुली के नीचे कमल है और उसके नीचे ध्वजा है और ध्वजा के नीचे लता है, जिसमें एक फूल लगा है। उनके पाँव की छिगुनी के नीचे अंकुश है और उनकी एड़ी में अर्धचन्द्र है। इस तरह उनके बाएँ पाँव में ११ चिह्न हैं।''

उनके दाहिने पाँव के अँगूठे के नीचे शंख है और उसके नीचे भाला है, उनके दायें पाँव की

छिगुनी के नीचे यज्ञवेदी है, जिसके नीचे कुंडल है और कुंडल के नीचे फिर भाला है। दूसरी, तीसरी, चौथी अँगुलियों तथा छिगुनी के नीचे पर्वत का चिह्न है, जिसके नीचे रथ है और एड़ी में मछली का चिह्न है।

''इस तरह श्रीमती राधारानी के चरणकमलों के तलवों में १९ विशिष्ट चिह्न हैं।''

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान्ब्रह्मेशौ रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९॥

शब्दार्थ

धन्याः—पवित्र हो गईं; अहो—ओह; अमी—ये; आल्यः—हे गोपियो; गोविन्द—गोविन्द के; अङ्घ्रि-अब्ज—चरणकमलों के; रेणवः—धूल कण; यान्—जो; ब्रह्मा—ब्रह्मा; ईशौ—तथा शिवजी; रमा देवी—भगवान् विष्णु की पत्नी, रमा देवी; दधुः—धारण करते हैं; मूर्ध्नि—अपने शिरों पर; अघ—उनके पापों का; नुत्तये—दूर करने के लिए।

हे बालाओ, गोविन्द के चरणों की धूल इतनी पवित्र है कि ब्रह्मा, शिव तथा रमादेवी भी अपने पापों को दूर करने के लिए उस धूल को अपने सिरों पर धारण करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने शास्त्र से उद्धरण देकर बतलाया है कि प्रत्येक दिन संध्या समय जब कृष्ण अपने ग्वालमित्रों के साथ चरागाहों से लौटते थे तो ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े बड़े देवता स्वर्ग से उतरकर उनके चरणों की धूल ग्रहण करते थे।

रमादेवी (विष्णु-पत्नी), शिव तथा ब्रह्मा जैसे महापुरुष तनिक भी पापी नहीं हैं। किन्तु शुद्ध कृष्ण भावनाभावित होकर वे अपने को पतित तथा अपवित्र मानते हैं। इस तरह अपने को शुद्ध करने की इच्छा से वे बड़े ही आनन्द से भगवान् के चरणकमलों की धूल अपने सिर पर धारण करते हैं।

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत्
यैकापहृत्य गोपीनाम्रहो भुन्क्तेऽच्युताधरम् ।
न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः
खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्न्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३०॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके; अमूनि—ये; नः—हमारे लिए; क्षोभम्—खेद; कुर्वन्ति—उत्पन्न करते हैं; उच्चैः—अत्यधिक; पदानि—चरणचिह्न; यत्—क्योंकि; या—जो; एका—अकेले; अपहृत्य—एक तरफ ले जाकर; गोपीनाम्—समस्त गोपियों का; रहः—एकान्त में; भुङ्क्ते—भोग करती है; अच्युत—कृष्ण के; अधरम्—होंठों का; न लक्ष्यन्ते—नहीं दिखते; पदानि—पाँव; अत्र—यहाँ; तस्याः—उसके; नूनम्—निश्चय ही; तृण—घास; अङ्कुरैः—तथा उगते हुए कल्लों द्वारा; खिद्यत्—पीड़ा होने से; सुजात—कोमल; अङ्घ्रि—पाँव; तलाम्—तलुवे; उन्न्ये—ऊपर उठा लिया; प्रेयसीम्—अपनी प्रिया को; प्रियः—उसके प्रियतम कृष्ण ने।

उस विशिष्ट गोपी के ये चरणचिन्ह हमें अत्यधिक विचलित कर रहे हैं। समस्त गोपियों में से केवल वही एकान्त स्थान में ले जाई गई जहाँ वह कृष्ण के अधरों का पान कर रही है। देखो न, हमें यहाँ पर उसके पदचिन्ह नहीं दिख रहे। स्पष्ट है कि घास तथा कुश उसके पाँवों के कोमल तलुवों को कष्ट पहुँचा रहे होंगे अत: प्रेमी ने अपनी प्रेयसी को उठा लिया होगा।

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्य: पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिन: ।
अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इमानि—ये; अधिक—अधिक; मग्नानि—मिले-जुले; पदानि—पदचिह्नों को; वहत:—ले जाने वाले के; वधूम्—अपनी प्रेयसी को; गोप्य:—हे गोपियो; पश्यत—जरा देखो; कृष्णस्य—कृष्ण के; भार—बोझ से; आक्रान्तस्य—पीड़ित; कामिन:—कामी; अत्र—इस स्थान में; अवरोपिता—नीचे रखी गई; कान्ता—प्रेमिका; पुष्प—फूलों (के चुनने) के; हेतो:—लिए; महा-आत्मना—अत्यन्त चतुर द्वारा।

मेरी प्यारी गोपियो, जरा देखो न, किस तरह इस स्थान पर कामी कृष्ण के पदचिन्ह पृथ्वी में गहरे धँसे हुए हैं। अपनी प्रियतमा के भार को वहन करना अवश्य ही उनके लिए कठिन हो रहा होगा। और यहाँ पर तो उस चतुर छोरे ने कुछ फूल चुनने के लिए उसे नीचे रख दिया होगा।

तात्पर्य : *वधूम्* शब्द सूचित करता है कि यद्यपि श्रीकृष्ण ने आधिकारिक रूप से राधारानी के साथ विवाह नहीं किया था किन्तु उन्होंने वृन्दावन के जंगल में उन्हें अपनी दुलहन बना लिया था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार गोपियों द्वारा प्रयुक्त *कामिन:* शब्द से निम्नलिखित विचार सूचित होते हैं ''हम वास्तविक रूप में श्रीकृष्ण से प्रेम करती हैं फिर भी उन्होंने हमें ठुकरा दिया है। अत: राधारानी के साथ उनके गुप्त व्यापार से सिद्ध होता है कि व्रज का यह तरुण राजकुमार काम के वशीभूत होकर उसे यहाँ से उठा ले गया है। यदि उन्हें प्रेम में रुचि होती तो वे उस ग्वालपुत्री राधारानी के स्थान पर हमें अपना बना लिये होते।''

ये विचार गोपियों के भाव को बतलाते हैं, जो श्रीमती राधारानी की प्रतिद्वंद्विने थीं। वस्तुत:, गोपियाँ, जो राधा की प्रत्यक्ष संगिनी हैं उसके सौभाग्य को देखकर हर्षित थीं।

अत्र प्रसूनावचय: प्रियार्थे प्रेयसा कृत: ।
प्रपदाक्रमण एते पश्यतासकले पदे ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ; प्रसून—फूलों का; अवचयः—चुना जाना; प्रिया-अर्थे—अपनी प्रिया के लिए; प्रेयसा—प्रेमी कृष्ण द्वारा; कृतः—किया गया; प्रपद—पैर का अगला हिस्सा (पंजा); आक्रमणे—धँसने से; एते—ये; पश्यत—जरा देखो; असकले—अपूर्ण; पदे—पदचिह्नों की जोड़ी।.

जरा देखो न, किस तरह प्रिय कृष्ण ने यहाँ पर अपनी प्रिया के लिए फूल चुने हैं। यहाँ उनके पाँव के अगले हिस्से (पंजे) का ही निशान पड़ा हुआ है क्योंकि फूलों तक पहुँचने के लिए वे अपने पंजों के बल खड़े हुये थे।

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

केश—अपने बालों के; प्रसाधनम्—गूँथने या सँवारने के लिए; तु—यही नहीं; अत्र—यहाँ; कामिन्याः—कामुक लड़की का; कामिना—कामी लड़के द्वारा; कृतम्—किया गया; तानि—उन (फूलों) से; चूडयता—जूड़ा बनाने वाले के द्वारा; कान्ताम्—अपनी प्रिया को; उपविष्टम्—बैठाया; इह—यहाँ; ध्रुवम्—निश्चित रूप से।.

कृष्ण यहाँ पर निश्चित रूप से अपनी प्रेयसी के साथ उसके केश सँवारने के लिए बैठे थे। उस कामी लड़के ने उस कामुक लड़की के लिए उन फूलों से जूड़ा बनाया होगा, जिसे उसने एकत्र किया था।

तात्पर्य : आचार्यगण बतलाते हैं कि श्रीकृष्ण ने अपने द्वारा चुने गये फूलों से राधारानी के केशों को सजाना चाहा। अतः वे दोनों एक ही दिशा में मुख करके बैठ गये जिससे राधारानी कृष्ण के घुटनों के बीच थीं और कृष्ण उन फूलों से जूड़ा बनाने लगे मानो वे उस वनदेवी को मुकुट पहना रहे हों। इस तरह विलासी तरुण तथा तरुणी साथ साथ वृन्दावन में खेलते और हास-परिहास करते रहे।

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

रेमे—आनन्द लूटा; तया—उसके साथ; च—तथा; आत्म-रतः—अपने में ही आनन्द लेने वाले; आत्म-आरामः—आत्मतुष्ट; अपि—यद्यपि; अखण्डितः—कभी अपूर्ण न रहने वाले; कामिनाम्—सामान्य विलासी पुरुषों का; दर्शयन्—दिखलाते हुए; दैन्यम्—दीनावस्था; स्त्रीणाम्—सामान्य स्त्रियों की; च एव—भी; दुरात्मताम्—निष्ठुरता।.

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] भगवान् कृष्ण ने उस गोपी के साथ भोग-विलास किया यद्यपि वे अपने आप में तुष्ट रहने तथा पूर्ण होने के कारण केवल भीतर ही भीतर आनन्दमग्न होते हैं। इस तरह विराधोभास के द्वारा उन्होंने सामान्य कामी पुरुषों एवं निष्ठुर स्त्रियों की दुष्टता

का प्रदर्शन किया।

तात्पर्य : यह श्लोक भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति कभी कभी की जाने वाली भौतिकतावादी लोगों की बनावटी आलोचना का खण्डन करता है। दार्शनिक अरस्तू का दावा था कि सामान्य कार्य ईश्वर को शोभा नहीं देते अत: कुछ लोग इसी विचार को ध्यान में रखकर घोषित करते हैं कि क्योंकि भगवान् कृष्ण के कार्यकलाप सामान्य मनुष्यों से मेल खाते हैं अत: वे परब्रह्म नहीं हो सकते।

किन्तु इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी जोरदार ढंग से संकेत करते हैं कि भगवान् कृष्ण आत्माराम के मुक्त पद पर स्थित होकर कर्म करते हैं। यह तथ्य *आत्मरत, आत्माराम* तथा *अखण्डित* जैसे शब्दों से सूचित है। सामान्य लोग यह सोच ही नहीं सकते कि एक सुन्दर तरुण तथा एक सुन्दरी युवती जंगल में चाँदनी रात में माधुर्य भाव से विलासरत होकर शुद्ध कर्म में लग सकते हैं, जो कामेच्छा तथा मिथ्या अभिमान से रहित हो। फिर भी कृष्ण सामान्य पुरुषों के लिए अचिन्त्य रहते हुए भी उन लोगों द्वारा जो उनसे प्रेम करते हैं सहज ही उनके कार्यकलापों में परम शुद्ध स्वभाव को अनुभव कर सकते हैं।

यह तर्क किया जा सकता है कि सौन्दर्य तो देखने वाले की आँखों में बसता है, अत: कृष्ण के भक्त भगवान् के कार्यकलापों को केवल शुद्ध होने के अनुमान लगाते हैं। यह तर्क अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की अवहेलना करता है। कृष्णभावनामृत के मार्ग की माँग है कि भक्त चार विधानों का दृढ़ता से पालन करे। ये हैं अवैध यौन, द्यूतक्रीड़ा, नशा तथा मांस, मछली या अंडे के आहार का सर्वथा निषेध। जब मनुष्य भौतिक कामेच्छा से मुक्त होकर मुक्त पद को प्राप्त होता है, तो उसे भगवान् कृष्ण के परम सौन्दर्य की अनुभूति होती है। यह विधि सैद्धान्तिक नहीं है। इसका अभ्यास हजारों ऋषि-मुनि करते आये हैं जिन्होंने कृष्णभावनामृत मार्ग विषयक अपने प्रकाशमय व्यक्तिगत उदाहरण एवं उज्ज्वल शिक्षाएँ हमारे लिए रख छोड़ी हैं।

निश्चय ही सौन्दर्य देखने वाले की आँखों में होता है। फिर भी असली सौन्दर्य आत्मा की आँखों से देखा जाता है, भौतिक शरीर की कामुक आँखों से नहीं। इसीलिए वैदिक वाङ्मय बारम्बार बल देता है कि केवल भौतिक इच्छा से मुक्त लोगों द्वारा भगवत्प्रेम से आँजी हुई, शुद्ध *आत्मा* की आँखों से ही

भगवान् का दर्शन किया जा सकता है। अन्तिम बात जो ध्यान देने की है, वह यह है कि भगवान् कृष्ण की लीलाओं की अनुभूति होने पर मनुष्य कामेच्छा से मुक्त हो जाता है, जो मानसिक स्थिति भौतिक काम-व्यापार के चिन्तन से प्राप्त नहीं की जा सकती।

अन्तिम टिप्पणी है : कृष्ण की माधुर्य लीलाएँ परम पूर्ण सत्य के रूप में उनकी अर्हताओं को पूर्णत: सिद्ध कर देती हैं। *वेदान्त* का कथन है कि परम सत्य प्रत्येक वस्तु का उद्गम है, अत: परम पुरुष में इस भौतिक जगत की किसी भी सुन्दर वस्तु का अभाव नहीं होता। चूँकि परम पुरुष में विलास-व्यापार केवल शुद्ध आध्यात्मिक रूप में ही पाये जाते हैं इसलिए वे इस जगत में विकृत भौतिक रूप में प्रकट हो सकते हैं। इस तरह इस जगत के आभासी सौन्दर्य को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता, प्रत्युत सौन्दर्य को उसके शुद्ध एवं आध्यात्मिक रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए।

चूँकि अनादि काल से पुरुष तथा स्त्रियाँ प्रणय-कला के कवित्वमय आनन्द से प्रोत्साहित होती रही हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस जगत में प्रेमालाप का अन्त हृदय-परिवर्तन या मृत्यु के कारण निराशा, में होता है। यद्यपि प्रेम-व्यापार प्रारम्भ में सुन्दर तथा आनन्दप्रद लगते हैं किन्तु अन्तत: प्रकृति के प्रहार से वे विनष्ट हो जाते हैं। फिर भी प्रणय की संकल्पना को पूरी तरह बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। हमें चाहिए कि माधुर्य आकर्षण को उसके चरम, पूर्ण, शुद्ध रूप में स्वीकार करें जैसाकि ईश्वर में यह पाया जाता है—भौतिक काम या स्वार्थ से सर्वथा रहित। *श्रीमद्भागवत* के इन पृष्ठों में हम शुद्ध माधुर्य आकर्षण—परम सत्य का परम सौन्दर्य और आनंद—का ही पठन करते हैं।

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतस: ।
यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्या: स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥
सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपी: कामयाना मामसौ भजते प्रिय: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; एवम्—इस विधि से; दर्शयन्त्य:—दिखलाती हुई; ता:—वे; चेरु:—घूमती रहीं; गोप्य:—गोपियाँ; विचेतस:—पूर्णतया भ्रमित; याम्—जिस; गोपीम्—गोपी को; अनयत्—ले गये; कृष्ण:—भगवान् कृष्ण; विहाय—छोड़कर; अन्या:—दूसरी; स्त्रिय:—स्त्रियों को; वने—जंगल में; सा—उसने; च—भी; मेने—सोचा; तदा—तब; आत्मानम्—अपने आपको; वरिष्ठम्—श्रेष्ठ; सर्व—सभी; योषिताम्—स्त्रियों में; हित्वा—त्यागकर; गोपी:—गोपियों को; काम-याना:—कामेच्छा से वशीभूत; माम्—मुझको; असौ—वह; भजते—मानता है; प्रिय:—प्रिया, प्रेमिका।

जब गोपियाँ पूर्णतया भ्रमित मनों से घूम रही थीं तो उन्होंने कृष्ण लीलाओं के विविध चिन्हों

की ओर संकेत किया। वह विशिष्ट गोपी जिसे कृष्ण अन्य युवतियों को त्यागकर एकान्त जंगल में ले गये थे, अपने को सर्वश्रेष्ठ स्त्री समझने लगी। उसने सोचा, ''मेरे प्रियतम ने उन अन्य समस्त गोपियों का तिरस्कार कर दिया है यद्यपि वे साक्षात् कामदेव के वशीभूत हैं। उन्होंने केवल मेरे ही साथ प्रेम करने का चुनाव किया है।''

तात्पर्य : इसके पूर्व सारी गोपियाँ कृष्ण की संगति के लिए गर्वित थीं किन्तु सहसा उनका संग छूट गया। केवल राधारानी उनके साथ रहीं। अब वे भी उस संग से गर्वित हो उठी हैं अतएव उन्हें भी वैसा ही परिणाम भोगना होगा। भगवान् के लिए गोपियों की अद्वितीय भक्ति प्रदर्शित करने के लिए ही भगवान् ने ऐसी योजना की है। यह वह भक्ति है, जिसकी गूढ़ता पूर्णतया विरह के क्षणों में ही प्रदर्शित होती है।

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

ततः—तब; गत्वा—जाकर; वन—जंगल के; उद्देशम्—एक कोने में; दृप्ता—गर्वित होकर; केशवम्—कृष्ण से; अब्रवीत्—बोली; न पारये—समर्थ नहीं हूँ; अहम्—मैं; चलितुम्—चल पाने के लिए; नय—ले चलो; माम्—मुझको; यत्र—जहाँ; ते—तुम्हारा; मनः—मन।

जब दोनों प्रेमी वृन्दावन जंगल के एक भाग से जा रहे थे तो विशिष्ट गोपी को अपने ऊपर गर्व हो आया। उसने भगवान् केशव से कहा, ''अब मुझसे और नहीं चला जाता। आप जहाँ भी जाना चाहें मुझे उठाकर ले चलें।''

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; प्रियाम्—अपनी प्रिया को; आह—कहा; स्कन्धे—मेरे कन्धे पर; आरुह्यताम्—चढ़ लो; इति—ये शब्द; ततः—तब; च—तथा; अन्तर्दधे—वे अन्तर्धान हो गये; कृष्णः—श्रीकृष्ण; सा—वह; वधूः—उनकी प्रिया; अन्वतप्यत—व्याकुल हो गई।

ऐसा कहे जाने पर भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया ''मेरे कन्धे पर चढ़ जाओ।'' किन्तु यह कहते ही वे विलुप्त हो गये। उनकी प्रिया को तब अत्यधिक क्लेश हुआ।

तात्पर्य : श्रीमती राधारानी उस सुन्दरी का मान (गर्व) दिखला रही थी जिसने अपने प्रेमी को

अपने वश में कर लिया हो। अत: वे कृष्ण से बोलीं ''आप जहाँ चलना चाहें मुझे उठाकर ले चलें। अब मैं और नहीं चल सकती।'' अब श्रीकृष्ण उनकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं जिससे उनका भावात्मक प्रेम अधिकाधिक गहन हो जाता है।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

हा—हे; नाथ—स्वामी; रमण—प्रेमी; प्रेष्ठ—प्रियतम; क्व असि क्व असि—तुम कहाँ हो, तुम कहाँ हो; महा-भुज—हे बलिष्ठ भुजाओं वाले; दास्या:—दासी के प्रति; ते—तुम्हारी; कृपणाया:—दीन; मे—मुझको; सखे—हे मित्र; दर्शय—दिखलाइये; सन्निधिम्—उपस्थिति।.

वह चिल्ला उठी: हे स्वामी, हे प्रेमी, हे प्रियतम, तुम कहाँ हो? तुम कहाँ हो? हे बलिष्ठ भुजाओं वाले, हे मित्र, अपनी दासी बेचारी को अपना दर्शन दो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने निम्नलिखित मार्मिक वार्तालाप का वर्णन किया है—

राधा कहती हैं, ''मेरे प्रभु! मैं आपकी वियोगाग्नि में जल रही हूँ और मेरे प्राण मेरा शरीर छोड़ने ही वाले हैं। मैं अत्यधिक प्रयास करके भी अपने प्राण नहीं रख पा रही। किन्तु आप मेरे जीवन के स्वामी हैं अत: मेरे ऊपर मात्र दृष्टि डालकर तुरन्त मुझे बचा सकते हैं। कृपया ऐसा तुरन्त कीजिए। मैं आपसे अपना जीवन बचाने की याचना अपने लिए नहीं अपितु आपके लिए करती हूँ। अन्य सारी गोपियों को त्यागकर आप मुझे जंगल में इस दूर एकान्त स्थान में मेरे साथ विशेष आनन्द उठाने के लिए लाये हैं। यदि मैं मरती हूँ तो आपको अन्यत्र माधुर्य सुख नहीं मिल सकता। आप मेरा स्मरण कर करके दुखी होकर पछताते रहेंगे।''

कृष्ण उत्तर देते हैं, ''मुझे दुखी होने दो। इससे तुम्हें क्या प्रयोजन?'' ''लेकिन आप मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं। मुझे आपका दुख आपसे लाखों गुना अधिक लगेगा। यदि मैं पहले मर भी चुकी होती तो भी मैं आपके चरणकमल के नाखून के एक बिंदु पर हुई पीड़ा को सहन नहीं कर सकती। ऐसी पीड़ा रोकने के लिए मैं अपने जीवन को लाख लाख बार ठुकराने के लिए तैयार हूँ। अत: मुझे दर्शन देकर उस दुख को दूर कीजिये।''

''किन्तु यदि तुम्हारे प्राण छूटने ही वाले हैं, तो उसे रोकने के लिए मैं कर ही क्या सकता हूँ?''

''केवल अपनी बाँहों का स्पर्श दे दो। वह ऐसी औषधि है, जिसकी शक्ति से मृत भी जीवित हो

उठता है। मेरा शरीर पुन: स्वस्थ हो जायेगा और मेरा प्राण मेरे शरीर में अपने आप वापस आ जायेगा और मेरे शरीर में ही टिका रहेगा।''

''किन्तु तुम तो मेरी सहायता के बिना ही जंगल का रास्ता जानती हो तो फिर तुमने मुझ इस राजकुमार तथा अत्यन्त तरुण एवं भद्र बालक को आदेश क्यों दिया। उसका तो आदर किया जाना चाहिए था। तुमने यह आदेश क्यों दिया कि तुम जहाँ चाहे ले चलो? तुमने मुझे इस तरह क्रुद्ध क्यों किया?''

राधा चिल्ला उठती हैं ''कृपा करके अपनी दीन दासी को अपना मुखड़ा दिखाइये। मुझपर कृपा कीजिये! कृपालु होइये। जब मैंने आपको आदेश दिया था, तो मैं नींद से विवश हो चली थी। मैं आपके साथ केलि करने से थक गई थी। अत: आपकी दासी बेचारी ने जो कहा उसे क्षमा कर दें। कृपया क्रुद्ध न हों। चूँकि आपने मेरे साथ ऐसे घनिष्ठ मित्र जैसा व्यवहार किया, यद्यपि मैं जिसकी पात्र न थी, इसीलिए मैं आपसे ऐसा कह गई।''

''ठीक, प्रिये! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ अत: मेरे पास आओ।''

''किन्तु मैं तो पश्चाताप से अंधी हो चुकी हूँ। मैं नहीं देख पा रही कि आप कहाँ हैं। बतलाइये न, आप कहाँ हैं।''

श्रीशुक उवाच
अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरित: ।
ददृशु: प्रियविश्लेषान्मोहितां दु:खितां सखीम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अन्विच्छन्त्य:—ढूँढ़ती हुई; भगवत:—भगवान् का; मार्गम्—रास्ता; गोप्य:—गोपियों ने; अविदूरित:—दूर नहीं, पास ही; ददृशु:—देखा; प्रिय—अपने प्रेमी से; विश्लेषात्—बिछुड़ने के कारण; मोहिताम्—मोहग्रस्त; दु:खिताम्—दुखी; सखीम्—अपनी सखी को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण के रास्ते को खोजती हुई गोपियों ने अपनी दुखी सखी को पास में ही ढूँढ़ निकाला। वह अपने प्रेमी के विछोह से मोहग्रस्त थी।

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।
अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययु: ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तया—उसके द्वारा; कथितम्—जो कुछ कहा गया; आकर्ण्य—सुनकर; मान—आदर की; प्राप्तिम्—प्राप्ति; च—तथा; माधवात्—कृष्ण से; अवमानम्—अनादर; च—भी; दौरात्म्यात्—अपने दुर्व्यवहार से; विस्मयम्—विस्मय; परमम्—अत्यधिक; ययुः—अनुभव किया।

उसने उन्हें बताया कि माधव ने उसको कितना आदर (मान) प्रदान किया था किन्तु अब उसे अपने दुर्व्यवहार के कारण अनादर झेलना पड़ा। गोपियाँ यह सुनकर अत्यन्त विस्मित थीं।

तात्पर्य : राधारानी द्वारा कृष्ण से उठाकर ले चलने के लिए कहना स्वाभाविक था क्योंकि यह याचना उनके प्रेम-सम्बन्ध के अनुकूल ही थी। किन्तु अब वे अत्यन्त दीनतावश अपने व्यवहार को कुटिल बताती हैं। इन बातों को सुनकर अन्य गोपियाँ विस्मित थीं।

ततोऽविशन्वनं चन्द्र ज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ।
तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अविशन्—प्रविष्ट हुईं; वनम्—जंगल में; चन्द्र—चन्द्रमा की; ज्योत्स्ना—चाँदनी; यावत्—जहाँ तक; विभाव्यते—दृष्टिगोचर थी; तमः—अँधेरा; प्रविष्टम्—प्रवेश किया हुआ; आलक्ष्य—देखकर; ततः—तत्पश्चात्; निववृतुः—विरत हो गईं; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

तत्पश्चात् गोपियाँ कृष्ण की खोज में जंगल के भीतर उतनी दूर तक गईं जहाँ तक चन्द्रमा की चाँदनी थी। किन्तु जब उन्होंने अपने को अंधकार से घिरता देखा तो उन्होंने लौट आने का निश्चय किया।

तात्पर्य : गोपियाँ जंगल के ऐसे घने भाग में जा पहुँची थी जहाँ पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश भी प्रवेश नहीं कर सकता था। *विष्णु पुराण* में इस दृश्य का भी वर्णन है :

प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते।

निवर्तध्वं शशांकस्य नैतद् दीधितिगोचरः ॥

''एक गोपी ने कहा : ''कृष्ण जंगल के ऐसे घने भाग में प्रविष्ट हो चुके हैं कि हम उनके पदचिह्नों को भी नहीं देख सकतीं। अतः हमें इस क्षेत्र से, जहाँ चाँदनी भी नहीं पहुँच सकती, लौट चलना चाहिए।''

तन्मनस्कास्तदलापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मगाराणि सस्मरुः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तत्-मनस्का:—उनके विचारों से भरे हुए मन; तत्-आलापा:—उनके विषय में बातें करती; तत्-विचेष्टा:—उनके कार्यकलापों की नकल करतीं; तत्-आत्मिका:—उनकी उपस्थिति से पूरित; तत्-गुणान्—उनके गुणों के विषय में; एव—केवल; गायन्त्य:—गाती हुईं; न—नहीं; आत्म—अपने; आगाराणि—घरों को; सस्मरु:—याद किया।

उन सब के मन उनके (कृष्ण के) विचारों में लीन होने से वे उन्हीं के विषय में बातें करने लगीं, उन्हीं की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं और अपने को उनकी उपस्थिति से पूरित अनुभव करने लगीं। वे अपने घरों के विषय में पूरी तरह भूल गईं और कृष्ण के दिव्य गुणों का जोर जोर से गुणगान करने लगीं।

तात्पर्य : वस्तुत: शुद्ध भगवद्भक्तों के लिए कृष्ण से विछोह नहीं होता है। यद्यपि ऊपर से लगता है कि कृष्ण ने गोपियों का परित्याग कर दिया था किन्तु वास्तव में वे *श्रवणं कीर्तनं विष्णो:* अर्थात् भगवान् के यश के श्रवण तथा कीर्तन की आध्यात्मिक विधि द्वारा उनसे मजबूती से बँधी थीं।

पुन: पुलिनमागत्य कालिन्द्या: कृष्णभावना: ।
समवेता जगु: कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिता: ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

पुन:—फिर से; पुलिनम्—किनारे पर; आगत्य—आकर; कालिन्द्या:—यमुना नदी के; कृष्ण-भावना:—कृष्ण का ध्यान करती; समवेता:—एकत्र हो गईं; जगु:—गाने लगीं; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; तत्-आगमन—उनके आगमन की; काङ्क्षिता:—आकांक्षा करती हुई।

गोपियाँ फिर से कालिन्दी के किनारे आ गईं। कृष्ण का ध्यान करते तथा उत्सुकतापूर्वक यह आशा लगाये कि वे आयेंगे ही, वे उनके विषय में गीत गाने के लिए एकसाथ बैठ गईं।

तात्पर्य : जैसाकि *कठ उपनिषद* (१.२.२३) में कहा गया है *यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:* परमात्मा की अनुभूति उसी को हो सकती है, जिसका वे चुनाव करते हैं। इस तरह गोपियाँ उत्कटतापूर्वक प्रार्थना करती हैं कि कृष्ण उनके पास वापस आ जाँय।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''गोपियों द्वारा कृष्ण की खोज'' नामक तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।